ISSN 2349-3887

दोआबा

समय से संगत

हर बार की तरह, इस बार भी, अप्रैल का बेरहम महीना मेरी कोठरी के बंद दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है। मैं बिस्तर से उठकर उस दस्तक की तरफ़ बढ़ता हूं। मेरे कांपते हाथ दरवाज़े की कुंडी खोलने की कोशिश करते हैं।

दरवाज़ा आधा खुल-सा गया है। आंगन की तरफ़ जाने वाला गलियारा गहरे सन्नाटे में डूबा है। दस्तक देने वाले हाथ नज़र नहीं आ रहे। कोई अदृश्य साया भी नहीं, जो मुझे अपने ज़िंदा वजूद का एहसास कराये।

मैं अपनी कोठरी में लौट आना चाहता हूं। पर मेरे क़दम ठिठक-से गए हैं। थोड़ी-सी थकी हुई सिसकियां मेरे कानों से टकराती हैं। कोई काया दीवार से लगी मेरी तरफ़ दर्द भरी नज़रों से देख रही है। आंसुओं ने उसके सूजे गालों पर अपनी तन्हाई की चादर फैला रखी है।

मुझे याद आता है, मुझे अभी-अभी किसी लंबे सफ़र पर निकलना है। जहां, अस्पताल के बड़े डाक्टर मेरी बची हुई ज़िंदगी का हिसाब लगाने को तैयार बैठे हैं।

कोठरी का दरवाज़ा अब भी बंद है। सिर्फ़ अप्रैल का महीना, हर बार की तरह, बंद दरवाज़े पर अपने कमज़ोर हाथों से थकी-थकी दस्तकें दे रहा है।

- जाबिर हुसेन

अप्रैल-जून 2024

दोआबा

समय से संगत

दोआबा

समय से संगत

अप्रैल-जून 2024
वर्ष 18 : अंक 49

आवरण : वाज़दा खान
रेखांकन : अनुप्रिया

मानद सहयोग

शहंशाह आलम
लता प्रासर, पवन कुमार, जावेद एक़बाल

प्रबंध

मोनिश हुसेन

कार्यालय : सुनील हेम्ब्रम

संपर्क
247 एम आई जी
लोहियानगर, पटना - 800 020
e-mail : doabapatna@gmail.com
मो.-08409044236

सर्वाधिकार सुरक्षित

पाकीज़ा ऑफसेट
शाहगंज, पटना-800 006
मो.-09334116542

मूल्य : ₹ 175/- (डाक खर्च अलग)

रचनाओं में अभिव्यक्त विचार रचनाकारों के अपने हैं।
संपादक का इन विचारों से सहमत होना ज़रूरी नहीं।

संपादक : **जाबिर हुसेन**
मो.-09431602575

अप्रैल-जून 2024

दोआबा

समय से संगत

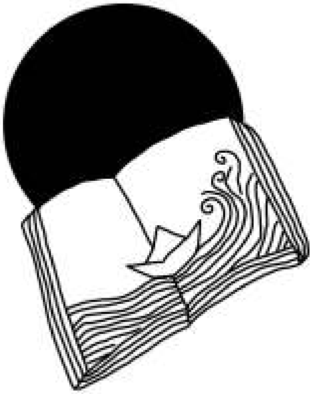

अनुक्रम

सुबूही हुसेन : अपनी बात / 05

रचना समय

ज़्यां पॉल सार्त्र : दीवार / 08
(अनुवाद : सुशांत सुप्रिय)

रजनी शर्मा : अब जैमती भी जेल में / 31

अनिल कुमार : पक्षियों की वापसी / 45

संस्मरण

प्रभा मजुमदार : शांति की ज़हर-आलूद दीवारें / 51

कविता समय

प्रभात सरसिज / 60

वाज़दा खान / 64

धर्मपाल महेन्द्र जैन / 69

देवेश पथ सारिया / 74

भास्कर चौधुरी / 80

स्वदेश भटनागर / 82

जया आनंद / 85

चारुमित्रा / 87

भानु प्रकाश रघुवंशी / 90

संवाद

अंतरिक्षसुता *(अनिल विभाकर)*

शहंशाह आलम : इस प्रस्थान का कोई अंत नहीं / 94

लपका *(सुनील चतुर्वेदी)*

निधि अग्रवाल : ग्यान गुनतारे की बातों का निर्मम सत्य / 100

देवयानी *(दीप्ति गुप्ता)*

राजेश्वर वशिष्ठ : स्त्री-जीवन के उतार-चढ़ाव की कथा-यात्रा / 103

भटके हुए लोग *(वेद प्रकाश)*

सुभाष चन्द्र सिंह : समय का आत्मालाप / 114

छलांग मारती स्त्रियां *(वंदना गुप्ता)*

अरविन्द श्रीवास्तव : बंदूक की नाल के सामने खड़ी स्त्री की अंतिम इच्छा / 124

बख़्तियारपुर *(विनय सौरभ)*

राजेश कमल : स्मृति भी एक अविष्कार है / 126

दोआबा-48 (जनवरी-मार्च, 2024)

वंदना गुप्ता : संपादक की प्रतिबद्धता / 129

पूनम सिंह : समय की पड़ताल / 131

शहंशाह आलम : साहित्य-समय का अन्वेषण / 133

प्रीति सिन्हा : फिर से भीग चला अंतर्मन / 134

□ □

सुबूही हुसेन

विचारों का कोलाज

दोआबा के 20वें अंक की तैयारी के बीच, एक दिन, उन्होंने एक वाक्य कहकर हम सब को चौंका दिया। बात उन्होंने बेहद सहज भाव से कही थी। शब्दों में कोई उत्तेजना नहीं थी, और न कोई अवसाद। बस, चाय पीते-पीते, चेहरे पर हल्की मुस्कराहट के साथ, उन्होंने यह बात कह दी थी।

अभी एक हफ़्ता हुआ कि उन्होंने अपनी 40-50 वर्षों की पसंदीदा चाय का ब्राण्ड यकायक बदलने का फ़ैसला कर लिया था। उस फ़ैसले ने भी घर-भर को चौंकाया था। लेकिन कोई उनके फ़ैसले पर एतराज़ करने को आगे नहीं आया। यह बात भी सच है कि इतने वर्षों से इस ब्राण्ड की चाय या तो वो खुद पीते या उनके मेहमान-दोस्त। घर के दीगर लोग तो तब भी तल्ख़ स्वाद का कोई और ब्राण्ड ही इस्तेमाल करते रहे।

हमारी परेशानी और असमंजस में उस वक्त ज़रूर ही कुछ इज़ाफ़ा हो जाता जब वो हमसे मिलने कभी हमारे घर आते। शुरू के दिनों में तो हम उनकी पसंद की चाय का एक डब्बा अलग से मंगा कर रखते। पर, आहिस्ता-आहिस्ता, अपनी बढ़ती व्यस्तता के कारण हमारे यहां उनका आना कम होता गया। अक्सर चाय की पत्तियां रखी-रखी अपना स्वाद खो देतीं, और हमें उसे कचरे के हवाले कर देना पड़ता।

चाय का ब्राण्ड बदलने का उनका फ़ैसला हमें सचमुच चौंका गया था। एक दिन, जब हम ने उनसे इस फ़ैसले की वजह जानना चाही तो बात को टालने के इरादे से कहने लगे – 'इस ब्राण्ड की क़ीमत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, तुम्हारी पसंद की चाय से शायद तीन गुनी। अब इतनी महंगी चाय पीकर क्या होगा! फिर इसके स्वाद में भी पहले जैसी बात